RNI Title Code:UPHIN42964 ISSN:2348-1730

ग़ज़लकार

ग़ज़ल की छमाही पत्रिका

वर्ष : 02, अंक : 03, जनवरी-जून 2015

सम्पादक
दीपक रूहानी

प्रकाशक
यथासम्भव
साहित्य, संस्कृति और कला की संस्था
भदारी कला, लालगंज, प्रतापगढ़ (उ. प्र.) पिन- 230132

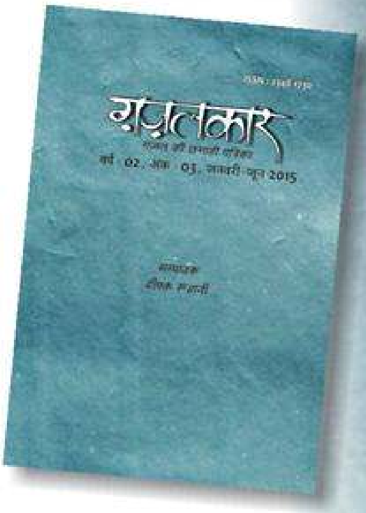

फ़ेहरिस्त

सम्पादकीय
'ग़ज़लकार' का घोषणा-पत्र /06

इस अंक के शायर
फ़रहत एहसास /**मैं तमाम गर्दो-ग़ुबार हूँ** /09
अख़्तर शीरानी /**मस्ताना पिये जा, यूँ ही मस्ताना पिये जा** /167

ग़ज़ल पर
शम्सुर्रहमान फ़ारूक़ी /**क्लासिकी ग़ज़ल की शेरीयात-2** /27

शायरों पर
डॉ. शहज़ाद अंजुम /**अज़हर इनायती का शेरी मंज़रनामा** /35
डॉ. वसीम अनवर /**मज्रूह सुल्तानपुरी पर एक तब्सिरा** /43

शायरात पर
अस्लम इलाहाबादी /**उर्दू-शायरी की अहम शायरात-3** /49

वसीम अनवर
असिस्टेण्ट प्रोफ़ेसर, उर्दू-विभाग
डॉ. हरी सिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय
सागर (म. प्र.) मो.- 09301316075

वसीम अनवर तरक़्क़ीपसन्द उर्दू-अदब से जुड़े युवा आलोचक हैं। तरक़्क़ीपसन्द तहरीक से जुड़े विभिन्न शायरों पर दर्जनों लेख लिख चुके हैं। साहित्य में तरक़्क़ीपसन्दी के अतिरिक्त सूफ़ीज़्म, तुलनात्मक अध्ययन, साहित्य के मनोवैज्ञानिक अध्ययन तथा दर्शन इत्यादि से जुड़े विषयों पर भी वसीम अनवर प्रायः कुछ-न-कुछ सार्थक लेखन करते रहते हैं। इनकी किताब 'कैफ़ी आज़मी : शख़्सियत, शायरी और अहद' काफ़ी चर्चित रही।

मजरूह सुल्तानपुरी उन गिने-चुने शायरों में हैं, जिनके जुड़ने से तरक़्क़ीपसन्द तहरीक अदबी दायरों से निकलकर सामान्य पाठकों और श्रोताओं तक पहुँच सकी। मजरूह की शोहरत का फ़ायदा इस तहरीक को परोक्ष-अपरोक्ष ढंग से प्रायः मिलता रहा। यही नहीं, मजरूह स्वयं इस तहरीक के प्रति गम्भीर थे और तमाम अन्तर्विरोधों और विरोधाभासों के बावजूद अन्त तक इससे जुड़े रहे। यहाँ मजरूह पर वसीम अनवर का लेख अत्यन्त संक्षेप में उनसे जुड़े विभिन्न पहलुओं पर सूत्रात्मक ढंग से संकेत करता है।

डॉ. वसीम अनवर

मजरूह सुल्तानपुरी पर एक तब्सिरा

तरक़्क़ीपसन्द ग़ज़लगो शोअरा में मजरूह सुल्तानपुरी एक अहम और विशिष्ट स्थान रखते हैं। उनका अस्ल नाम असरार हसन ख़ाँ था। 1919 ई. में गुजहड़ी गाँव, ज़िला सुल्तानपुर उ. प्र. में पैदा हुए, इब्तिदाई तालीम अरबी और फ़ारसी में हुई। पेशे से हकीम थे, लेकिन शेरो-शायरी के शौक़ ने पेशा छोड़ देने पर मजबूर कर दिया। मुशायरों में शिरकत करते और कलाम के असर और तरन्नुम के जादू से मुशायरे लूट लेते थे। इसी ज़माने में मजरूह को 'जिगर' की सरपरस्ती हासिल हुई, लेकिन शायरी पर 'जिगर' का कोई ख़ास असर नज़र आता है। 'जिगर' साहब अपने साथ इस नौजवान शोअरा को मुशायरों में ले जाते थे। इसी दौरान 1944 ई. के एक मुशायरे में शिरकत के लिए जिगर के साथ मजरूह बम्बई गये और वहीं के होकर रह गये। फ़िल्मी दुनिया से बतौर नग़्मानिगार वाबस्ता होकर ग़ैरमामूली शोहरत हासिल की। 24 मई 2000 ई. को 81 साल की उम्र में मुम्बई में मजरूह का इन्तक़ाल हो गया।

मजरूह ख़ालिस ग़ज़लगो शायर हैं। मजरूह का तख़्लीक़ी सफ़र (सृजन-यात्रा) आधी सदी से ज़्यादा तवील अरसे तक फैला हुआ है, लेकिन उन का अदबी सरमाया बहुत ही मुख़्तसर है। उनकी ग़ज़लों की कुल तादाद कमो-बेश पचास होगी। इब्तिदा में उन्होंने कुछ नज़्में, गीत, नात, मनक़बत और हम्द वग़ैरह में भी तबअआज़माई (काव्य-अभ्यास) की, मगर बाद में सिर्फ़ ग़ज़ल को ही अपने इज़हार का ज़रीआ बनाया। ग़ज़ल मजरूह की मर्ग़ूबतरीन सिन्फ़-सुख़न (पसन्दीदा काव्य-विधा) थी, इसलिए उन्होंने अपने मजमूआ-ए-कलाम का नाम 'ग़ज़ल' रखा। जिसके तरमीम-ओ-इज़ाफ़े के बाद तक़रीबन नौ एडीशन शाए (प्रकाशित) हुए और फिर बाद में 'मशअले-जाँ' के नाम से भी शाए हुआ, जिसका आधे से ज़्यादा हिस्सा ग़ज़ल पर इज़ाफ़े की हैसियत रखता है।

मजरूह इब्तिदा से ही क्लासिकी आईन-ओ-आदाब के क़ायल रहे हैं। उनके कलाम पर क्लासिकी फ़ारसी रवायत के असरात बहुत गहरे थे। उनकी इब्तिदाई ग़ज़लें बड़ी पुरख़ुलूस और पुराने तग़ज़्ज़ुल से भरपूर हैं—

> *इल्तिफ़ात नमदूँ न देखूँ अदूँ इसको*
> *रह गये ख़ालिस बनकर उसकी कमनिगाहें भी*
> *इस नज़र के उठने में उस नज़र के झुकने में*
> *नग़्मए-सहर भी है आहे-सुबहगाही भी*

> *कभी जादए-तलब से जो फिरा हूँ दिलशिकस्ता*
> *तेरी आरज़ू ने हँसकर वहीं डाल दी हैं बाहें*